सीधा संवाद

संत रैदास: सामाजिक क्रांति के अग्रदूत

डॉ. एन. सिंह
प्रख्यात बहुजन चिंतक
और
ख्यातिप्राप्त अकेडमिशियन
सहारनपुर, उत्तर प्रदेश
मोबाइल 9412355707,
Whatsapp- 9528382209
ईमेल drnsingh 27@gmail-com
वेबसाइट www. drnsingh.com

हिंदी साहित्य के मध्यकाल के पूर्वार्द्ध भाग को 'भक्तिकाल' के नाम से अभिहित किया जाता है। यह मध्यकालीन भारत की दीनता, धार्मिक, अंध-विश्वासों एवं सामाजिक विकृतियों का काल था। विदेशी आक्रांता शासक, भारतवासियों पर जुल्म ढा रहे थे तो भारत के लोग भी धार्मिक रूढ़ियों के आधार पर और अधिक बंटते जा रहे थे। जिसके कारण भारत का सामाजिक ढांचा पूर्णत: अस्त-व्यस्त हो गया था। कुल मिलाकर यह धार्मिक राजनीतिक और सामाजिक पतन का काल था। ऐसे ही समय में दीन-हीन भारत की दुखी जनता को सामाजिक स्वास्थ्य के लिए समता की संजीवनी पिलाने के लिए भारतभूमि पर संत रैदास का आर्विभाव हुआ था–

चौदह सौ तैंतीस की
माघ सुदी प्रदास।
दुखियों के कल्याण हित
प्रकटे श्री रैदास।।

माघ की पूर्णिमा को ही समस्त भारत में रैदास संप्रदाय के लोग बड़ी धूम-धाम से संत रैदास की जयंती मनाते हैं। इसका आधार गुरु गोविंद सिंह कालीन संत करमदास की यही उक्ति है। इसके अनुसार उनका जन्म सम्वत् 1433 वि. की माघ पूर्णिमा को हुआ था। जबकि 'अगस्त्य-संहिता' के अनुसार इनकी जन्मतिथि 'चैत्र सुदि द्वितीया शुक्रवार' है। रैदास काव्य का अध्ययन करने पर अन्त: और बाह्य कोई ऐसा प्रमाण उपलब्ध नहीं होता, इसका उल्लेख कबीर ने अपनी वाणी में किया है–

साधुन में रैदास संत हैं,
सुपच ऋषि सो मानिया।
हिंदू तुर्क दुई दीन बने हैं,
कछु नहीं पहिचानिया।।

संत रैदास ने भी कबीर को 'गुरु समान कबीर बड़ भ्राता' कहकर सम्मान दिया है। इससे यह तथ्य प्रमाणित होता है कि संत रैदास और संत कबीर दोनों एक ही समय में विद्यमान थे।

इस आधार पर संत रैदास का समय निश्चित करना सरल हो जाता है। संत कबीर का जन्म सम्वत् 1456 अद्यावधि सर्वमान्य है। कोई जन्मतिथि निश्चित करना यदि सर्वमान्य भले ही न हो लेकिन यह सर्वमान्य है कि दिल्ली सल्तनत के अंतिम दौर और मुगलकाल शुरू होने की दहलीज तक

का काल संत रैदास की मौजूदगी का काल था। इस प्रकार संत रैदास के जन्मकाल को कबीर के जन्म सम्वत् से दो-चार वर्ष के अंतर से निश्चित किया जा सकता है, क्योंकि रैदास ने स्वयं कबीर को 'बड़ा' स्वीकार किया है। अत: संत रैदास का जन्म काल सम्वत् 1456 से सं. 1467 के बीच ही तर्कसंगत बैठता है। जबकि 'शोध पत्रिका' में प्रकाशित लेख 'संत रैदास का समय' में श्री वेद प्रकाश गर्ग ने रैदास का जीवनकाल सं. 1415 से लेकर सम्वत् 1525 के आसपास माना है।

संत करमदास की उक्ति को यदि सही तिथि के रूप में स्वीकार किया जाता है तो उस समय दिल्ली में फिरोज शाह तुगलक (1315-1388 ई.)का शासन था। जहां फिरोज के शासन का अंत होता है वहां संत रैदास 12 वर्ष के हैं। और तुगलक वंश के अंत के समय (1413 ई.) उनकी आयु 37 वर्ष थी। सैयद वंश के शासन का अंत होने तक संत रैदास की आयु 74 वर्ष की हो गई थी। लोदी वंश में संत रैदास ने 1526 तक 75 से 150 वर्ष तक आयु गुजारी थी। लोधी वंश के अंत के कुछ समय बाद ही संत रैदास का परिनिर्वाण 1527 ई. (विक्रम संवत 1584) में हो गया था।

कुछ शोध विवरणों में हम संत रैदास का जन्म 'मांडूर' नामक स्थान पर हुआ माना जाता था। अब मांडूर का नाम 'मडुवाडीह' हो गया है। जो मुगलसराय स्टेशन से डेढ़-दो मील की दूरी पर ग्रांट ट्रंक रोड पर स्थित है। 'रैदास रामायण' में इसका उल्लेख मिलता है।

कासी ढिंग मांडूर सथाना,
शूद्र वरण करत गुजराना।
मांडूर नगर लीन ओतारा,
रैदास सुभ नाम हमारा।।

'रैदास वाणी' में भी उनके जन्म-स्थान का 'बनारस' के आस-पास होने का उल्लेख है।-

'मेरी जाति कुटवांढला ढोर ढुंबता।
नित ही बनारसी आस पास।।

ज्ञात होगा कि हाल-फिलहाल में मडुवाडीह रेलवे स्टेशन का नाम बदलकर बनारस कर दिया गया है।

संत रैदास अपने अनेक पदों में जाति की अवधारणा का विरोध करते हुए मिलते हैं, तो कुछ पदों में हम पाते हैं कि वे अपनी जाति बता रहे हैं। मन में आयेगा कि जाति का विरोधी, अपनी पहचान को जाति के आधार पर क्यों बताएंगा। जाति ब्राह्मणवादी सामाजिक व्यवस्था का हिस्सा है, जो पूरे समाज पर लागू है, लेकिन रैदास भले ही जाति की अवधारणा का विरोध करते हैं, ब्राह्मणवादी व्यवस्था में अपनी जगह और स्थिति भी बताते हैं। इसलिए उनके इस पद से उनकी जाति का भी पता चल जाता है, ऊपर के पद में वे अपनी जाति 'कुटवांढला' बताते हैं, वहीं उनकी वाणी में एक स्थान पर लिखा मिलता है-'मेरी जाति विख्यात चमारा'। खैर रैदास के चिंतन में जाति कोई मूल्य नहीं रखती इसलिए जाति को उनके साथ जोड़कर संत रैदास को पहचानने पर हमें भी जोर नहीं देना चाहिए।

संत रैदास की मां का नाम करमाबाई तथा पिता का नाम राघवदास था। जो चमड़े से जूते बनाने का काम करते थे। संत रैदास भी जीवन भर अपना पैतृक पेशा ही करते रहे। वे किसी को यदि नंगे पांव देख लेते थे तो अपनी दिनभर की मेहनत से बनाया हुआ जूता उठाकर सादर भेंट कर देते थे। तंग आकर उनके पिता ने उन्हें घर से अलग कर दिया। ये घर के पीछे झोंपड़ी डालकर अपनी साधक पत्नी लोना के साथ रहने लगे तथा पुराने जूते गांठकर अपने परिवार का पालन-पोषण करने लगे। साधु संगति के प्रति इनका अनुराग फिर भी कम नहीं हुआ। इनके परिवार को विपन्नता में दिन काटने पड़े, जिससे लोग इनका उपहास भी करते थे *'दारिद देखी सब कोई हँसे ऐसी दशा हमारी।'* लेकिन अध्यात्म मार्ग के पथिक को इन कष्टों की चिंता कहां? परिणाम स्वरूप इनकी ख्याति सर्वत्र फैल गयी जिसके कारण काशी के विद्वान, पंडित उनके विरोधी हो गये। किंतु अंततोगत्वा सभी ने उनकी श्रेष्ठता को स्वीकार कर लिया था।

गरीब निवाज गुसैया
मेरे माथे तिलक धरै।
नीचहि ऊँच करे मेरा
गोविन्द काहु ते न डरै।।

जातिविहीन अवधारणा के संत रैदास के शिष्यों में सभी जाति व संप्रदाय के लोग थे। झाली रानी (झालावाड़ के राजा की पुत्री रत्न कुँवरी) तथा मीरा उनकी शिष्या थी। मीरा ने इस तथ्य को अपने एक पद में स्पष्ट स्वीकार किया है।

गुरु मिल्या रैदास जी
दीन्ही ग्यान की गुटकी।

संत रैदास का अधिकांश समय काशी में ही व्यतीत हुआ। किंतु फिर भी वे देशभर में भ्रमण करते रहे। जीवन के अंतिम समय में उनका शरीर वृद्धावस्था के कारण इतना जर्जर हो चुका था कि वे देश-देशांतर के भ्रमण लायक नहीं रहे।

अब मैं हारयो रे भाई।
हलन चलन ते थकित भई देह
लोकन वेद बड़ाई।
थकित भयो नाचन और गायन है,
थाकी पूजा सेवा।।

चित्तौड में ही संत रैदास का शरीरांत सम्वत् 1584 में हुआ इस संबंध में एक उक्ति प्रचलित है–

पंद्रह सौ चऊ अशी,
भई चित्तौड़ मंह भीर।
जर-जर देह कंचन भई,
रवि रवि मिल्यो शरीर।।

यहां पर कुंभ श्याम मंदिर के पास रैदास की छतरी बनवाई गई, जिसमें उनके चरण-चिह्न आज भी अंकित हैं। अनंतदास वैष्णव ने लिखा है–

हरिसागर में बूँद समानी,
कोड न जाने कहाँ समानी।

भारतीय संस्कृति अंतविरोधों का विचित्र समन्वय है। यहां एक ओर तो किसी अछूत को पूजा, उपासना और पठन-पाठन का अधिकार नहीं दिया जाता था, वहीं दूसरी ओर यदि कोई अछूत सिद्धि प्राप्त कर ले तो उसे उदारता से स्वीकार भी कर लिया जाता रहा। मध्यकालीन भारत में संत कवि रैदास इन्हीं अन्तर्विरोधों का एक सशक्त उदाहरण है। क्रान्तिकारी, समाज सुधारक, दार्शनिक, भक्त और कवि जैसी विशेषताओं से विभूषित उनके व्यक्तित्व को एक जाति विशेष तक सीमित कर उसकी परिधि को छोटा ही किया गया जबकि वे जयदेव, नामदेव, गुरु नानक, कबीर आदि महान संतों की अविरल परंपरा की एक महत्त्वपूर्ण कड़ी थे, इसलिए उनके सर्जनात्मक व्यक्तित्व का मूल्यांकन इसी परिप्रेक्ष्य में रखकर किया जाना चाहिये।

संत रैदास के चालीस पद तो 'गुरु ग्रंथ साहब' में संकलित हैं तथा अन्य पांडुलिपियों से दो सौ के लगभग पद तथा ढाई सौ से अधिक 'साषियां' जो दो पंक्तियों के समतुकान्त छंदों में दोहों की तरह हैं। उनके परवर्ती कुछ लेखकों ने उन्हें 'साखियां' भी कहा है, प्राप्त हो चुके हैं। अब तक उनकी इस सामग्री के अतिरिक्त एक और ग्रन्थ 'प्रहलाद चरित' का भी पता लगा है। विद्वानों का ध्यान इस ओर गया है और वे सोचने लगे हैं कि संत रैदास के काव्य का अध्ययन किये बिना सम्पूर्ण संत काव्य का अध्ययन अधूरा है। संत रैदास काव्य के मर्मज्ञ अध्येता डा. बी. पी. शर्मा (भूतपूर्व एसोशिएट प्रोफेसर, यू.जी.सी., पंजाब विश्वविद्यालय, चंडीगढ़) ने 7 मई 1979 के अपने पत्र में मुझे लिखा था- 'वास्तव में संत रैदास पांडुलिपियों की परतों में दबे रहे, इस चमार को किसी ने देखा ही नहीं, अन्यथा यह चमार विचित्र भक्त था। 130 वर्ष जूझता रहा जीवन संघर्ष में। आखिर 'सकल राजधानी को अगवानी में लेकर' भारत सम्राट 'राणा सांगा' ने चित्तौड़ दुर्ग की 1800 फुट ऊँची चौहद्दी पर उनका स्वागत किया था।' हालांकि इस पत्र की भाषा अतिशयोक्ति पूर्ण है, क्योंकि राणा सांगा कभी भारत सम्राट नहीं रहे। फिर भी इस पत्र में संत रैदास का महत्त्व ध्वनित होता है, वहीं उनकी व्यापक उपेक्षा की ओर भी संकेत दृष्टिगोचर होता है। उनकी उपेक्षा का इससे बड़ा प्रमाण क्या होगा कि इस संत शिरोमणि का काव्य शताब्दियों तक यूं ही उपेक्षित पड़ा रहा और अब भी उसे वह सम्मान प्राप्त नहीं है , जिसकी वे काबिलियत रखते थे।

मध्यकालीन भारत अंधविश्वासों के अंधेरें में सांस ले रहा था, कुछ बेबुनियाद रूढ़ियों ने उसमें और डर पैदा कर दिया था। रैदास की ख्याति सर्वत्र फैल जाने के उपरान्त भी सवर्ण हिंदू उन्हें अछूत ही समझते थे। इसका उल्लेख उनके काव्य में यूं मिलता है।

रैदास तूं कांवचि फलि
तुझे न छिवे कोय।

उन्होंने अपने हृदय के इस दर्द को अपनी वाणी में बड़ी सहजता से व्यक्त किया है–

हम अपराधी नीच घर जन्में,
कुटुम्ब लोग करे हाँसी रे।

दूसरे लोगों की बात और थी खुद उनके कुटुम्ब लोग ही उनका उपहास करने लगे थे, ऐसी परिस्थितियां किसी भी व्यक्ति को अन्तर्मुखी कर सकती है और निराशा से भर सकती है। तमाम तरह की उपेक्षा को सहकर भी संत रैदास सर्जनशीलता से अपनी मुश्किलों को सकारात्मक दिशा में मोड देते। वे सामाजिक रूढ़ियों पर पुनर्चिन्तन करते और तब जाकर कहीं वे रूढ मान्यताएं प्रहार करते थे। संत रैदास ने तत्कालीन रूढियों के प्रति विद्रोह किया, इसलिए उन्हें सामाजिक क्रांति का अग्रदूत कहने में कोई अत्युक्ति नहीं है।

ऐसे समय में सजग साहित्यकार का जो दायित्व है, उसका संत रैदास ने बड़ी सहजता से निर्वाह किया। सर्वप्रथम उन्होंने मनुष्यों के बीच बनाये गए हिंदू-मुसलमान के भेद को खारिज कर दिया, उन्होंने कहा कि इंसान केवल इंसान है, हिंदू या तुर्क कहने से उसमें कोई भेद पैदा नहीं होता, इस तरह से उन्होंने समाज में एकता स्थापित करने का प्रयास किया क्योंकि बाहरी आक्रान्ताओं के साथ आई अवधारणाओं ने यहाँ के मूलनिवासियों में हिंदू और तुर्क का भेद पैदा करके सभी को

परेशान किया हुआ था, इसलिए उन्होंने पहले सैद्धांतिक लकीर को ही मिटाना उचित समझा जिससे भावात्मक एकता स्थापित हो सके। यह तभी सम्भव था जब राम और रहीम के मनुष्य होने के यथार्थ को समझा जाये और स्वीकार किया जाए तथा वेद और कुरान को लोग वैसा ही समझे जैसी वे हैं

कृष्णा-करीम, राम-हरि-राघव,
जब लग एक न पेषा।
वेद-कतेब-कुरान-पुरानन
सहज एक नहीं वेषां।।

कृष्णा-करीम, राम-हरि-राघव, ये किसी ईश्वरीय शक्ति के नाम नहीं हैं, जब तक आप इन्हें एक जैसे मनुष्य के रूप में नहीं परख पाते हैं तब तक आप नहीं समझ सकते कि वेद, कुरान, पुराण, इनमें से किसी भी किताब का सहज वेश (रूप) नहीं है।

मंदिर मस्जिद एक है,
इन मंह अन्तर नाहि।
रैदास राम रहमान का,
झगडऊ कोऊ नाहि।।

मंदिर और मस्जिद दोनों ईंट-पत्थरों के बनें हैं, दोनों ही उपासना की जगह है, दोनों में एक प्रभारी नियुक्त है जिसे पुरोहित या मुल्ला कहा जाता है। मंदिर और मस्जिद में कोई अंतर नहीं होने पर भी, ये मंदिर और मस्जिद ही एक मनुष्य को राम कहकर और दूसरे मनुष्य को रहमान कहकर भेद करा रहे हैं, और झगड़ा करा रहे हैं। रैदास कहते है कि जब दोनों मनुष्य है, तो इनके बीच कोई भेद हो ही नहीं सकता तो झगड़ा क्या होगा।

***

रैदास हमारा राम जोई,
सोई है रहमान।
काबा कासी जानि याहि,
दोऊ एक समान।।

किसी मनुष्य का नाम बदल जाने से मनुष्य नहीं बदल जाता, इसलिए हमारे तो जो राम है, वही रहमान है यानी दोनों इंसान ही हैं। काबा और कासी जब उपासना की जगह है, तो दोनों में अंतर कैसे हो सकता है। अपनी बात को और सहज और सरल तरीके से बतलाने के लिए रैदास कहते हैं कि

रैदास कंगन और कनक माहि,
जिमी अन्तर कछु नाहिं।
तैसऊ ही अन्तर नहीं,
हिन्दुअन तुरकन माहीं।।

जैसे सोना और सोने से बना कंगन अलग-अलग चीज नहीं हैं, कंगन बन जाने के बाद भी सोना, सोना ही है। वैसे ही किसी को हिंदू और किसी को तुर्क कह देने पर भी वे मनुष्य ही रहेंगे।

सच्ची बात यदि अभी भी समझ में नहीं आ रही है तो आगे संत रैदास कहते हैं कि

हिंदू तुरक नहीं कछु भेदा,
सभ मंह एक रक्त और मांसा।
दोऊ एकह दूजा कोऊ नांही,
पेख्यो सोध रैदासा।।

अर्थात हिंदू और तुर्क के रूप में पहचाने जाने वाले इंसानों में कोई भेद नहीं है, सभी में एक जैसा रक्त और एक जैसा मांस है। दोनों एक ही हैं, दूजा या अलग कुछ नहीं, मैं रैदास शोध-परखकर अपनी बात कह रहा हूं।

रैदास सच्चाई से अवगत है इसलिए उनके लिए इंसान बस इंसान है, उनके लिए मुसलमान इंसान की तरह दोस्त है, इस वजह से हिंदू दुश्मन नहीं बन जाता, हिंदू भी इंसान है, उससे भी उतनी ही प्रीत है।

मुसलमान सौ दोस्ती,
हिन्दुअन सौ कर प्रीत।

रैदास के यहां राम द्वैत की वैसी शक्ति है, जहां दो या दो से ज्यादा दृश्य या अदृश्य चीजें आपस में जुड़कर किसी तीसरी चीज को उत्पन्न करती हैं, वही शक्ति संसार की नियंता है, उसे ही निर्गुण राम कहते हैं। इसी निर्गुण की जोत से जो अप्रकाशित है, वह प्रकाशित होता है, जिसका वजूद नहीं है, उसका वजूद बनता है। इंसान भी ऐसी ही द्वैत (दो) की जोति से उत्पन्न हुआ है। जब सब अपने जैसे ही उत्पन्न हो रहे है, तो परायापन या दूजापन कहां से उत्पन्न हो सकता है, जब सब अपने जैसे ही हैं तो सभी अपने मीत हैं।

रैदास' जोति सभ राम की,
सभ हैं अपने मीत।।

इस प्रकार संत रैदास ने तत्कालीन परिस्थितियों में समाज को उचित दिशा

सर्वप्रथम उन्होंने मनुष्यों के बीच बनाये गए हिंदू-मुसलमान के भेद को खारिज कर दिया, उन्होंने कहा कि इंसान केवल इंसान है, हिंदू या तुर्क कहने से उसमें कोई भेद पैदा नहीं होता, इस तरह से उन्होंने समाज में एकता स्थापित करने का प्रयास किया क्योंकि बाहरी आक्रान्ताओं के साथ आई अवधरणाओं ने यहाँ के मूलनिवासियों में हिंदू और तुर्क का भेद पैदा करके सभी को परेशान किया हुआ था, इसलिए उन्होंने पहले सैद्धांतिक लकीर को ही मिटाना उचित समझा जिससे भावात्मक एकता स्थापित हो सके।

देने के लिए धार्मिक अंधविश्वासों का भंडाफोड़ करके समस्त मनुष्यों को भेदभाव भूलकर आपस में मिल-जुलकर इस देश की उन्नति के लिए कार्य करने का उपदेश दिया। उनका यह उपदेश तत्कालीन परिस्थितियों में जितना आवश्यक था, सामयिक संदर्भों में भी इतना ही प्रासंगिक हैं क्योंकि भौतिक दृष्टि से इतनी वैज्ञानिक उन्नति कर लेने के बावजूद भी धार्मिक अंधविश्वास पूर्णत: नष्ट नहीं हो पाये हैं। आज भी मंदिर और मस्जिद को लेकर राम और रहमान का सांप्रदायिक दंगा निरन्तर हो रहा है। ऐसी स्थिति में संत रैदास के काव्य से सबक लेना आवश्यक है।

इस समय की समस्त प्रचलित रूढ़ियों पर संत रैदास ने दृष्टिपात किया है वर्ण-व्यवस्था को हिंदू धर्म का कोढ़ माना जाता है। वर्ण-व्यवस्था का अभिशाप चौथे वर्ण अर्थात् 'शूद्र' को ही सहना पड़ा। प्रारम्भ में वर्ण जन्मत: नहीं कर्मत: निर्धारित किये जाते थे। किंतु मध्य काल तक आते-आते इस स्वस्थ मान्यता ने रूढ रूप ले लिया। चूँकि संत रैदास को ब्राह्मणों ने शूद्र वर्ण से सम्बद्ध किया था। इसी कारण उन्हें उच्च वर्ण का उपहास तो सहना पड़ा ही, कभी-कभी प्रतिशोध का शिकार भी होना पड़ा। इसलिए उन्हें इन सड़ी-गली मान्यताओं के पुनर्मूल्यांकन की आवश्यकता पड़ी। अत: पहले तो उन्होंने ब्राह्मणों की बनाई हुई अविद्यापूर्ण दार्शनिक व्यूह रचना की मान्यताओं का सैद्धान्तिक स्तर पर विरोध सम्यक दर्शन के सिद्धांतों से किया। उन्होंने सम्यक दृष्टि से कहा–

रैदास एक बूँद सौ,
सब ही भयो वित्थार।
मूरिख हैं जो करत हैं
वरन अवरन विचार।।

अर्थात रैदास कहते हैं कि पिंता के शरीर से निकल कर जो एक बूंद मां के शरीर में गई उसी से तो मेरा-तुम्हारा विस्तार हुआ है, अब कोई मुर्ख ही होगा जो एक इंसान को वर्ण का कहेगा और दूसरे इंसान को अवर्ण कहेगा। अब आगे संत रैदास कहते हैं कि

रैदास एक ही नूर ते
निमि, उपज्यों संसार।
ऊँच-नीच किहि विध भये,
ब्राह्मण और चमार।।

अर्थात जब वह परिस्थिति एक ही है, जिसमें दो चीजों के परस्पर मिलने से किसी अतिरिक्त चीज की निमित्ति होती है, उपजती है, ऐसे ही ये संसार उपजा है, फिर बताओं जब इस विधि से तो सभी समान रूप से उपज रहे है, तो ब्राह्मण और चमार किस विधि से ऊंच-नीच उपज सकते हैं।

इसके बाद उन्होंने स्पष्ट घोषणा कर दी कि कोई भी व्यक्ति जन्म के कारण ऊँच-नीच नहीं हो सकता, क्योंकि मनोवांछित जन्म लेना तो किसी के भी हाथ की बात नहीं है। हाँ, व्यक्ति के इहि-लौकिक कर्म अवश्य ही उसके श्रेष्ठत्व अथवा निकृष्टत्व को निर्धारित करते हैं।

रैदास जन्म के कारणै,
होत न कोई नीच।
नर को नीच करि डारि हे,
औछे करम की कीच।।

इस आधार पर भारतीय समाज को विभिन्न जातियों में बाँटकर और अधिक कमजोर करने की कोशिश की गई। संत रैदास की पूर्ण मान्यता है कि जब तक इस देश में जाति-प्रथा जैसी अविद्यापूर्ण दृष्टि रहती है, तब तक सामाजिक दुखों का अंत नहीं हो सकता। तथागत बुद्ध ने भी कहा था कि अविद्या ही सभी दुखों की जननी है। अविद्यापूर्ण ज्ञान के ही कारण एक इंसान अपने जैसे इंसान को अपना जैसा इंसान नहीं देख पा रहा है। एक जैसे इंसान होने के बावजूद जाति की अविद्यपूर्ण दृष्टि के कारण साथ-साथ रहने वाले दो इंसान अलगाय रहते हैं, उनके बीच का अलगाव खत्म नहीं होता है, अविद्यापूर्ण जाति के कारण उत्पन्न अलगाव का उत्कृष्ट उदाहरण संत रैदास केले के तनै के रूप में देते हैं–

जात-जात में जात है,
ज्यों केलन के पात।
'रैदास' न मानुष जुड़ सके,
ज्यों लौ जात न जात।।

अर्थात जैसे केले के तनै में चिपके छिलके एक साथ एक ही जगह पर रहने के बाद भी एक-दूसरे से अलगाय रहते है, इससे केले का तना सभी पेड़ों में सबसे कमजोर साबित होता है, वैसे ही जाति-प्रथा के कारण एक ही भारत देश में रहने वाले मनुष्य एकमेव होकर क्यों नहीं रहते, उससे कमजोर साबित होता है। बाहरी आक्रांताओं से भारत के हारने का कारण जाति के कारण उत्पन्न नागरिकों में अलगाव की व्यवस्था ही रही है।

भारत के लिए यह दुखद रहा है कि यहां पर जाति ही व्यक्ति का सामाजिक स्तर निर्धारित करती रही है। उसे ऊंच और नीच मानने और मनवाने पर बाध्य करती रही है। संत रैदास इसीलिए ऐसी जाति प्रथा को जो व्यक्ति-व्यक्ति को जोड़ती नहीं तोड़ती है 'रोग' मानते हैं–

जात पात के फेर महि,
उरझि रहइ सब लोग ।
मानुषता को खात हई,
रैदास जात कर रोग।।

जाति ने एक इंसान के नीचे दूसरे इंसान को रख दिया और प्रत्येक व्यक्ति को बता दिया कि वह तुमसे नीचा है और तुम उससे ऊंचा हो। ऊंचा होने के कारण तुम्हारे अधिकार ज्यादा है और नीचा होने के कारण नीच के अधिकार कम है। नीच देखे गए इंसान को उत्पादन में कम हिस्सा देकर खुद को ऊंच देखने वाला इंसान जाति-प्रथा की मिथ्या दृष्टि में उलझ गया। अपने को ऊंच दृष्टि से देखने पर लाभ यह मिल रहा था कि हर ऊंच व्यक्ति अपनी मेहनत और कुशलता से ज्यादा उत्पादन में हिस्सा लेने को आतूर हो गया, और नीचे के व्यक्ति की मेहनत और कुशलता का न्यायसंगत हिस्सा भी उसे नहीं देता बेशक वह भूख से मर जाए। अविद्यापूर्ण दृष्टि की जाति प्रथा की अवधारणा मनुष्य की मनुष्यता खा गई। जाति की इस मिथ्या दृष्टि ने नीचे पायदान पर जन्म लेने वाली संतानों को ऊपर के पायदान पर आने से सख्ती से रोक दिया। इस तरह समाज में नीचे के पायदान पर खड़ा हर व्यक्ति अपने से ऊपर वाले की मिथ्या दृष्टि में पीढ़ी-दर-पीढ़ी नीच हो गया। मिथ्या दृष्टि के कारण जन्म से ही जाति के नाम पर नीचे ढकेल दिये लोगों का प्रतिनिधि स्वर बनकर संत रैदास आज भी कह रहे हैं कि

जन्म जात मत पूछिए,
का जात और पात।
'रैदास' पूत सम प्रभु के,
कोई नहि जात कुजात।।

अर्थात जाति जन्म से निश्चित कर दी गई है, उसे मुझसे क्यों पूछ रहे हो, अगर पूछ रहे हो तो यह भी बताओं कि जात का पात क्या है अर्थात किस कारण से जाति को माना जाए और उसका पालन किया जाए, जिस परम शक्ति से तुम उत्पन्न हुए हो, उसी शक्ति से मैं भी उत्पन्न हुआ हूं तो कौन जात है और कौन कुजात है। आगे मानो वे किसी ब्राह्मण से संवाद में कर्म कौशल के महत्व को बताते हुए कह रहे है कि

जन्म जात कूँ छाँड़ि करि,
करनी जात परधान।
इहयों वेद को धरम है,
करै रैदास बखान।।

अर्थात जन्म के आधार पर जो जाति तुमने तय कर दी है, उसकी क्या बात करते हो, उसे छोड़ों, अगर कोई जाति यहां प्रधान है, तो वह कर्मगारों की है। क्योंकि कर्मगारों के कारण जरूरतों की पूर्ति होती है। वेदों का धर्म इससे अलग नहीं, इसके बाद संत रैदास ने वेदों की व्याख्या करके बताया। दयानंद सरस्वती की दृष्टि में भी वेद पंडों द्वारा स्थापित रूप से अलग थे।

संत रैदास कहते हैं कि ब्राह्मण, क्षत्री, वैश्य और शूद्र सभी को बनाने वाला वही द्वैत है यानी दो के बीच सहयोगात्मक संबंध, वहीं एक स्थिति है जो सबकी 'सिरजनहार' है। दो के बीच सहयोग की एक ही स्थिति का विस्तार यह सारा संसार है। उसी से किसी व्यक्ति आत्म या आपा (आत्मा) बनता है और उसी से सृष्टि का परमात्म (परमात्मा) बनता है। एक व्यक्ति का आत्म अनेक तत्वों के बीच परस्पर सहयोगपूर्ण क्रिया का प्रतिफल होता है, वैसे ही अनेक आत्म के द्वारा की जाने वाली परस्पर क्रियाओं से परम-आत्म (परमात्मा) बनता है। आत्म (आत्मा) उस परम-आत्म का अंश है और परम-आत्म अनेक आत्म का समुच्चय है। इस तरह से पदार्थ ही वह मूल माटी है, जिससे आत्म और परमात्म का सर्जन होता है, चार पदार्थ (जल, थल, वायु और ताप) के बीच होने वाली क्रिया ही ब्रह्म है, उसी का सब जगह (सगल) प्रसार (पसार) हो रहा है–

एक माटी के सभ भांडे
सभ का एकै सिरजनहार।
'रैदास' व्यापै एकै घट भीतर,
सभ कौ एकै घड़े कुम्हार।।
'रैदास' एकै ब्रह्म का
होई रहयों सगल पसार।
एके माटी सब घट सरजे,
एकै सभ कूं सरजनहार।।

इस प्रकार रैदास ने 'वर्ण व्यवस्था' और 'जाति व्यवस्था' की मिथ्या दृष्टि का विरोध किया। डा. बृजमोहन शर्मा के इस कथन में सत्य ही ध्वनित हुआ है– *'छुआछूत एवं ऊँच-नीच को ही नहीं बल्कि गुरु जी ने मांसाहार अनैतिकता के अतिरिक्त धनलिप्सा, दुराचरण जैसे तत्वों को असामाजिक बतलाकर एक लंबी क्रांति का सूत्रपात किया। धार्मिक, संकीर्णताओं, भेदभावों को भी उन्होंने सर्वथा त्याज्य बतलाया है, क्योंकि यह भेदभाव ही 'वसुधैव*

भारतीय समाज को विभिन्न जातियों में बाँटकर और अधिक कमजोर करने की कोशिश की गयी। संत रैदास की पूर्ण मान्यता है कि जब तक इस देश में जाति-प्रथा जैसी अविद्यापूर्ण दृष्टि रहती है, तब तक सामाजिक दुखों का अंत नहीं हो सकता। तथागत बुद्ध ने भी कहा था कि अविद्या ही सभी दुखों की जननी है।

कुटुम्बकम्' का विरोधी है।'' इसी ने तो आदमी को आदमी से दूर किया है। मानवीयता के लोकोपकारी सिद्धांतों के प्रसार एवं प्रचारार्थ मन्दिर, मस्जिद, गिरजाघर आदि पूजा स्थानों तथा काबा, काशी, मक्का, मथुरा आदि तीर्थस्थानों का भी कोई विशेष महत्त्व नहीं है क्योंकि द्वैत की प्रभुता का वास हर जगह है–

का मथुरा का द्वारिका
का कासी हरिद्वार।
रैदास खोजा दिल अपना,
तऊ मिलिया दिलदार।।

जिस शक्ति की खोज में भ्रमित इंसान मथुरा, द्वारका, कासी या हरिद्वार जाता है, वह शक्ति तो हर व्यक्ति के तन व मन में समाहित है। उस द्वैत की प्रभुता को खोजने के लिए अपने अंदर झांकने की जरूरत है। खुद को सहयोगपूर्ण रवैये के साथ किसी से जोड़ने या जुड़ना ही तो वह शक्ति है, जिसे ब्रह्म भी कहा जा सकता है। ब्रह्म कोई एक शक्ति नहीं है, बल्कि विभिन्न पदार्थों की शक्ति का पुंज है। यही पुंज का कोई एक अंश इंसान है, कोई दूसरा अंश पेड़ है, कोई तीसरा अंश जानवर को जिंदा रखता है, इस तरह इसका न आदि है और न अंत है। इस शक्ति पुंज का किसी आकार के अंदर किसी भी प्रकार से कोई स्थायित्व नहीं है, यह बस एक बहाव है, जैसे जल-प्रवाहित नदी का होता है। जिसे इस पल हाथ टेक कर नदी कहा जाता है, वह पानी तो उसी पल आगे निकल गया और जिसे अब हम नदी कह रहे है, वह पीछे से आगे आया हुआ पानी है। नदी के प्रवाह में कुछ भी स्थायी नहीं है। वैसी किसी काया में कोई स्थायित्व नहीं है, केवल-भर द्वैत समूहों के पुंज का अंश प्रवाहमान है, यही संत रैदास का दिलदार है, इसे ही वे साहिब कहते हैं जो घट में व्याप्त है।

समस्त मिथ्याचारों तथा आडम्बरों का संत रैदास ने डटकर विरोध किया। उनकी मान्यता थी कि *'मन ही पूजा मन ही धूप, मन ही सहजै सकल सरूप।'* वस्तुतः मन की शुद्धता ही महत्त्वपूर्ण है। उन्होंने समस्त बुराइयों पर एक-एक कर सशक्त चोट की। समाज सुधारक के नाते उन्होंने समाज की सही नब्ज को पकड़ा। जैसे तत्कालीन राजे-महाराजे रात-दिन शराब के नशे में डूबे रहते थे जिसका परिणाम यह हुआ कि 'यथा राजा तथा प्रजा'। निम्न आय वर्ग के लोगों में भी यह व्यसन फैल गया जो इनके पतन का बहुत बड़ा कारण सिद्ध हुआ। संत रैदास ने इसे रोकने के लिए देखिए कैसी मीठी सीख दी है–

'रैदास मदुरा का पीजिये,
जो चढै-चढ़े उतराय।
नाव महारस पीजिये,
जो चढ़े नाहिं उतराय।।

इसी प्रकार मांसाहार भी व्यसनों में एक था। यह पापाचार एवं आत्मिक अशुद्धता का मूल कारण है। संत रैदास ने इसके मूल 'जीव हत्या' पर चोट की तथा 'जीव हत्या' को पाप बताकर 'अहिंसा' के श्रमण सिद्धांत का प्रचार किया

रैदास जीव मत मारहिं
इक साहिब सब मांहि।
सब मांहि एकउ आतमा
दूसरह कोउ नांहि।।

***

दया भाव हिरदै नहीं,
भखहिं पराया मास।
ते नर नरक मंह जाइहिं,
सत भाषै रैदास।।

उन्होंने जीव हत्या कर नमाज पढ़ने की मनोवृति को दूषित करार दिया। उन्होंने स्पष्ट किया कि किसी जीव को मारकर कभी भी खुदा की प्राप्ति नहीं हो सकती। जिस गाय और बकरी को खुदा ने पोषण के लिए बनाया है भला उसे मारकर ईश्वर की प्राप्ति कैसे हो सकती है–

रैदास जउ पोषण हेत,
गऊ बकरी नित खाय।
पढई नमाजे रात-दिन
तबहु भिस्त न पाय।।
रैदास जीव कूँ मारि कर,
कैसो मिलहि खुदाय।
पीर पैगम्बर ओलिया,
कोउ न कहइ समुझाय।।

ईश्वरवादियों में जो स्थान 'पूजा', 'प्रार्थना', 'नमाज' और 'आराधना' का है, समणों में वही स्थान इंद्रियों के संयम के लिए 'साधना' का है। वह व्यक्ति जो अपने मन से इंद्रियों को साध लेता है, उसके लिए सुख और दुख की भावनाएं एक जैसी हो जाती हैं, इसी अवस्था को निर्वाण कहा जाता है, महायानियों ने इसे 'अमरित पद' कहा है, नीचे दी गई पंक्तियों में संत रैदास के ज्ञान के स्कूल का पता चलता है, और इस स्कूल द्वारा तय किया गया जीवन लक्ष्य यानी अमरित पद की प्राप्ति लक्षित होता है–

जो बस राखे इन्द्रियां,
सुख दुख समझि समान।
सोऊ अमरित पद पायगो,
कही रैदास बखान।।

इच्छाओं को भोग से दूर रखने पर ही व्यक्ति का मन शांत रहता है, मन की शांति ही संतोष का कारण है, और संतोष व्यक्ति का सबसे बड़ा धन है।

धन संचय करने से सुख नहीं मिलता, सुख मिलता है धन को सत्कर्म में खर्च करने से–

सच्चा सुख सत्त धरम मंहि,
धन संचय सुख नांहि।
धन संचय दुख खान है,
रैदास समझि मन मांहि।।

जरूरत से अधिक धन का संचय वास्तव में अन्य की जरूरत के धन का अपहरण करना है। जिससे अनेक लोगों के जीवन में दुख की खान खुद जाती है। समाज में विषमताओं का जन्म हो जाता है। वस्तुत: व्यक्ति के व्यक्तित्व से जब तक विषमतायें समाप्त नहीं हो जाती, वह श्रेष्ठता प्राप्त नहीं कर सकता। इसलिए मनुष्य को अपने जीवन में पाँच विकारो (काम, क्रोध, मद, मोह और लोभ) से सदैव दूर रहना चाहिये। जिस व्यक्ति ने इन पंच विकारों को त्याग दिया वह व्यक्ति महान हो जाता है। संत रैदास सत्य, संतोष और सदाचार को ही जीवन का आधार मानते हैं–

सत संतोष अरू सदाचार,
जीवन का आधार।
'रैदास' भये नर देवते,
जिन तियागे पंच विकार।।

सत संगति का जीवन में बड़ा महत्त्व है आचार्य शुक्ल 'कुसंगति के ज्वर' को सबसे भयानक मानते हैं। दुराचारी व्यक्ति की संगति व्यक्ति को पथ भ्रष्ट कर देती है संत रैदास ऐसे व्यक्ति से जो सत्य नहीं बोलता, विश्वासघात करता है, भूलकर भी बात न करने की सलाह देते हैं–

जो नर सत्य न भाषहिं
अरू करहिं विश्वासघात।
तिन्ह हुं सौ कबहुं भुलिहिं,
रैदास न कीजिये बात।।

इसके विपरीत वे सज्जन (साधु) व्यक्ति के गुणों का विस्तार से वर्णन करते हैं कि साधु को सांसारिक मोह-माया में लिप्त नहीं होना चाहिये, उसे निवैर होकर समस्त अवगुणों को छोड़कर परम सत्ता को जानना व समझना चाहिये, साधु में अहं का भाव न हो, वह मिथ्या भाषी न हो, उसे परोपकारी होना चाहिये, उसे क्षमाशील तथा तृष्णा रहित होना चाहिये। संत रैदास द्वारा श्रेष्ठ मनुष्य के जितने गुणों का उल्लेख किया गया है, नि:सन्देह यह समस्त गुण सम्पूर्ण मानवता के आभूषण हैं–

रैदास सोई साधु भलो,
जऊ जग मंहि लिपत न होय।
गोविन्द सों रांचा रहइ
अरू जानहि नहीं कोय।
रैदास सोइ साधु भलो,
जउ मन अभिमान न लाय।
ओगुन छोड़हि गुन गहेय
सिमरई गोविन्द राय
रैदास सोई साधु भलो,
जउ अपनह आपु न जताय।
सतवादी, सांचा रहइ,
मनन हरि चरनन मंह लाय।
रैदास सोई साधु भलो,
जो पर उपकार कमाय।
जइसोई कहहिं तहसोई करहि,
आपा नाहिं जताय।।

इन गुणों से विभूषित मानव श्रेष्ठ की संगति करने से ही व्यक्ति का मन निर्मल हो सकता है तथा पाप-मुक्ति संभव है–

रैदास सोई साधु भलो,
निर्मल जाके बैन।
जिहि करि दरस और परस
सों मन उपजहिं सुख-चैन।

कोई ऊंचे कुल में पैदा होकर महान हो जाए, यह कोई आश्चर्य की बात नहीं है किंतु कोई साधारण आय वर्ग तथा सामाजिक दृष्टि से हेय समझे जाने वाले कुल में उत्पन्न होकर महान हो जाए, यह अपने-आप में आश्चर्य की बात है। संत रैदास इस तथ्य का एक जीवंत उदाहरण है। उनकी इस महानता का एक ही रहस्य है और वह है उनकी 'श्रम-साधना' यानी श्रम में आस्था का होना। निष्क्रियता व्यक्ति को हर स्तर पर तोड़ देती है, इसलिए संत रैदास व्यक्ति को सदैव नेक नियत से कर्मशील रहने का उपदेश देते हैं–

रैदास स्रम करि खाइए
जौ लौ पार बसाय।
नेक कमाई जो करहूँ
कबहुं न निहफल जाय।
स्रम को ईसर जानिके,
जऊ पूजाहिं दिन-रैन।
रैदास तिन्हाहि संसार में,
सदा मिलिहिं सुख-चैन।।

उनकी ये कर्मनिष्ठा, कभी भी उनकी पूजा, उपासना में बाधक नहीं हो पाई। जो व्यक्ति हाथ से काम करता हुआ जिव्हा से उनका नाम लेता रहे, ऐसे श्रेष्ठ व्यक्ति को ईश्वर घर आकर मिलते हैं–

जिव्हा सो ओंकार जप,
हत्थन सौ कर कार।
राम मिलिहिं घर आईकर,
कहि रैदास विचार।।

काम करते हुए भी व्यक्ति के मन में अभिमान न आने पर तथा वह काम करते रहते हुए भी किसी प्रकार के फल की इच्छा न रखे। इससे बड़ा त्याग और क्या हो सकता है। जीवन का कर्ता भाव कुछ अलग चीज नहीं है बल्कि जीव और कर्म मूलत: एक ही भाव हैं, इसलिए संत रैदास का कहना है–

सौ बरस लौ जगत मंहि,

जीवत रहि करू काम।
रैदास करम ही धरम है,
करम करहु निहकाम।।
धरम हेतहिं कीजिये,
सौ बरस लौ कार।
रैदास करमहि धरम है,
फल माहि नहीं अधिकार।।

धर्म उन प्रवृत्तियों को कहते हैं, जो हमारे कर्म से जुड़ी होती है। प्राचीन काल से हमारे देश भारत में मां, पिता, पुत्र, पुत्री, राजा, अध्यापक, सैनिक आदि के कर्म को ही धर्म कहा गया है, जैसे राजा का धर्म, सैनिक का धर्म, मां का धर्म व पुत्र का धर्म। कर्म दायित्व है, पुरस्कार नहीं होता है। कर्म का पारितोषिक देना या पुरस्कार देना किसी दूसरे व्यक्ति का धर्म है। कर्म करते समय इस निष्काम कर्मयोगी संत ने, गृहस्थ जीवन का निर्वाह करते हुए जीवन भर काम किया और 'परम पद' प्राप्त किया। डा. शिव प्रसाद गोयल ने ठीक ही लिखा है कि आधुनिक युग में संत रैदास की विचारधारा का अपना विशिष्ट महत्त्व है। लौकिक दृष्टि से जब बड़े से लेकर छोटे तक सब प्राणी कर्त्तव्य विमुख हो रहे हैं तब लोक-परलोक की निन्दा स्तुति से दूर अपनी साधक पत्नी के साथ मामूली-सी झोपड़ी में बैठे हुए जूते सी-सीकर जीविका चलाने वाले मस्त फकीर और तन्मय भक्त रैदास का कर्त्तव्य परायण होकर गृहस्थ जीवन व्यतीत करते हुए आत्मोद्धार के लिए-भक्ति पथ अपनाने का सन्देश किसे नहीं मोह लेता?'

भारत की पराधीनता इन्हें भी खली तथा इन्होंने इस पराधीनता को पाप बताते हुए कहा कि पराधीन व्यक्ति को सब ही हीन समझते हैं तथा ऐसे व्यक्ति से कोई भी प्रीत नहीं करता। पराधीन व्यक्ति का कोई भी धर्म नहीं होता। इसलिए हम सब भारतीयों को जाति, धर्म आदि मतभेदों को छोड़कर इस पराधीनता से मुक्त होने का आह्वान करते है–

पराधीनता पाप है,
जान लेहू रे मीत ।
रैदास दास प्राधीन सो
कौन करें हैं प्रीत।।

***

पराधीन को दीन क्या,
पराधीन बेदीन।।
रैदास दास प्राधीन कौ,
सबहिं समझे हीन।।

इन पंक्तियों में संत रैदास के मन में छिपी विद्रोह की चिंगारी स्पष्ट परिलक्षित होती है। सत्य भी है ऐसा संघर्ष जीवी व्यक्ति किसी भी प्रकार की परतन्त्रता को कहां स्वीकार कर सकता है। संत रैदास एक ऐसे स्वराज की कल्पना करते थे, जहां पर प्रत्येक व्यक्ति को अन्न मिले तथा सब मनुष्य बराबर हों, किसी प्रकार की ऊंच-नीच न हो, सब लोग प्रसन्न रहें। कुल मिलाकर यह एक साम्यवादी, समाजवादी व्यवस्था की कल्पना करते हैं।

ऐसा चाहौ राज मैं,
जहां मिले सबन को अन्न।
छोट बड़ों सभ सम बसै,
रैदास रहें प्रसन्न।।

उपर्युक्त समस्त, विवेचन के उपरान्त निष्कर्षत: कहा जा सकता है कि संत रैदास का जीवन और काव्य उदात्त मानवता के लिए आवश्यक सदाचारों के शाश्वत सैद्धांतिक मूल्यों का अक्षय भण्डार है, जिसमें से प्रत्येक वर्ग और स्थिति तथा मानसिक स्तर का व्यक्ति अपने लिए सुंदर-सुंदर मोतियों का चुनाव सुगमता से कर सकता है।

उन्होंने हिंदू-मुसलमानों को उनके यथार्थ स्वरूप यानी इंसान की पहचान में स्थापित कर भावात्मक एकता स्थापित करने के प्रयास किया। छूआछूत तथा वर्ण व्यवस्था जैसी अविद्यापूर्ण दृष्टि का विरोध कर सामाजिक स्वास्थ्य के लिए अचूक औषधि तैयार की। 'जीव हत्या' को पाप घोषित कर मांसाहार जैसी प्रवृत्ति को समाप्त करने का प्रयास किया तथा अंहिसा के सिद्धान्त का प्रचार किया। वहीं पर मानव मात्र को पूजा के साथ-साथ श्रम के प्रति आस्था का भी उपदेश दिया। इससे भी बड़ी बात जो उस युग के किसी और संत कवि के काव्य में दिखाई नहीं देती, वह है उनकी स्वतंत्र चेतना। उन्होंने तत्कालीन समाज में व्यापक सामाजिक, आर्थिक तथा राजनैतिक शोषण के विरुद्ध आवाज उठाई थी और एक ऐसे समाज की कल्पना की थी जिसमें विषमतायें न हो। प्रत्येक व्यक्ति श्रम करके जीविकोपार्जन करे तथा भारत के सभी लोग मिलकर देश की भूमि पर रहें तथा इसके सर्वांगीण विकास के लिए कार्य करें।

इन संपूर्ण तथ्यों पर गम्भीरता से विचार करने के उपरान्त हम कह सकते हैं कि संत रैदास के काव्य का वैचारिक आधार बहुत दृढ़ तथा उसकी भावात्मक पृष्ठभूमि बहुत ही विस्तृत तथा सामाजिक महत्त्व की है जिसकी प्रासंगिकता सामयिक संदर्भों में आज भी असंदिग्ध है।❑